शास्त्रीय नृत्य शैलियों का ज्ञान

गाना बजाना और नाचना, प्रफुल्लित मन की स्वाभाविक क्रियाएँ हैं जो पशु-पक्षी, कीट-पतंग, देव-दानव और मनुष्य सभी में पाई जाती है। इन स्वाभाविक क्रियाओं को जब कोई स्थिति या अवस्था में की जाती है तो उसे कला कहते हैं। मन में उठे हर्ष, विषाद, सुख या दुख की अनुभूति को जब हम विभिन्न भाव भंगिमा या मुद्राओं द्वारा व्यक्त करते हैं तो उसे 'नृत्य' कहते हैं। अंगों, उपांगों और प्रत्यंगों के मेल से जो रस और भावों की अभिव्यक्ति होती है उसे ही नृत्य कहते हैं । अभिनय तथा अनुकरण और अवस्था विशेष को जब हम ताल एवं लय के साथ चलाते हैं तो वह सम्पूर्ण नृत्य कहलाता है।

भारतीय नृत्य को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है-शास्त्रीय नृत्य एवं लोकनृत्य। शास्त्रों पर आधारित नियमबद्ध नृत्य को शास्त्रीय नृत्य कहते हैं। लोककला पर आधारित नृत्य 'लोक नृत्य' कहलाता है। भारतवर्ष में जो शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ मुख्य रूप से प्रचलित हैं वे निम्नलिखित हैं-भरतनाट्यम, कथाकलि, मणिपुरी, कथक, ओडिसी, मोहिनीअट्टम, कुच्चीपुड़ी व पूर्वांचल का क्षेत्रीय नृत्य है।

भरतनाट्यम (तमिलनाडु प्रदेश में प्रचलित)

भरतनाट्यम भारत के प्राचीन परम्परागत शास्त्रीयों नृत्यों में प्रमुख स्थान है। इस नृत्य शैली में पुराना नाम ''दासी-अत्तम'' है। दासी का अर्थ-देव दासियों द्वारा किया जाने वाला खेल। भरतनाट्यम के शिक्षक नत्तुवन कहे जाते थे। जो अपनी शिष्याओं को निःशुल्क रूप से शिक्षा देते थे। जिससे शिष्याएँ कला में पारंगत होकर धन अर्जित करती थीं और उस राशि का एक अंश अपने गुरू को आजीवन समर्पित करती रहती थीं। बिना अपने गुरु के वे अपनी कला का प्रदर्शन नहीं करती थीं।

भरतनाट्यम का प्रदर्शन क्रमशः छः चरणों में पूर्ण होता है, जिनके नाम हैं–

(क) अलारिप्पु–इस शब्द का अर्थ ''विकसित या प्रस्फुटित होना'' है। पैरों को सटाकर ''समपाद'' स्थिति में रखकर नमस्कार की मुद्रा के पश्चात् ही नृत्त प्रारंभ होता है। इस प्रारंभिक कार्यक्रम में ग्रीवा, नेत्र और भौं के विभिन्न परिचालनों से, नृत्य किया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें शरीर के दोनों भागों का एक समान परिचालन होता है। अर्थात् जैसा दाहिना अंग का परिचालन होता है, ठीक उसी प्रकार की स्थितियां बायें अंग से प्रस्तुत की जाती है।

(ख) जत्तिस्वरम्–अलारिप्पु के पश्चात ''जेथीस्वरम'' या ''जातिस्वरम'' प्रस्तुत किया जाता है । इसमें ताल के विभिन्न करतब दिखाएँ जाते हैं। नर्तकी कमर पर हाथ रखकर पैरों के सीधे परिचाल से ताल दिखाती है उसके बाद वह जाति का काम उठाती है । मृदंगवादक व नर्तकी क्रमशः ''सोलुकूट'' और ''चोल्लु'' का काम दिखाते हैं। मृदंग में बजने वाले बोल ''चोल्लु'' तथा पद संचालन से निकलने वाली घुंघरू की ध्वनि ''सोल्लुक्कतु'' कही जाती है।

(ग) शब्दम्–इसके द्वारा पहली बार साहित्य या सार्थक शब्दावली से दर्शकों को परिचित कराया जाता है और अभिनय की झलक प्रारंभ होती है। जेथीस्वरम की किसी तिरमान (अर्थात तिहाई) के बाद गीत प्रारंभ हो जाता है। इस गीत में अधिकतर ईश्वर की वंदना होती है। नर्त्तक वह भाव दिखाकर ''सलाम'' करता हुआ पीछे हटता जाता है।

(घ) वर्णम्–यह भरतनाट्यम का सबसे रोमांचित अंश होता है। इस कार्यक्रम में नृत्त व अभिनय दोनों ही पूर्ण रूप में देखने को मिलते हैं। ''वर्ण'' के पीछे चलने वाले गीत पल्ल्वी, अनुपल्ल्वी और चरणम् में विभक्त होते हैं। पल्लवी में एक संक्षिप्त सा प्रश्न किया जाता है, जैसे-''आज चांद क्यों नहीं उगा''। अनुपल्लवी में उसका प्रेमाख्यान प्रारंभ होगा, जहां उसकी तुलना नायिका के मुँख से की जाएगी और बताया जाएगा कि इसी कारण लजा कर चांद नहीं उगा। उसका अंत ''चरणम्'' द्वारा होता है, जिसमें नायक नायिका के प्रेम का आनंनदायी वर्णन होता है। चरणम् अंश में नर्त्तकी को अपना कौशल दिखाने की बड़ी स्वतंत्रता रहती है तथा अनुठे रागों में बंधे हुए गीत दर्शकों को मंत्रमुग्ध करते हैं।

(ङ) पदम्–वर्णम के उपरांत जयदेव, पुरेन्दरदास भारती जैसे कवियों के पदों का गान आरंभ होता है, जिसने नृत्य अंश कम और अभिनय तत्व अधिक होता है। इन गीतों में शृंगार रस की प्रधानता होती है, जिसे नर्त्तकी अपनी विभिन्न मुद्राओं से साकार रूप होती है। पद की एक-एक पंक्ति को अनेक प्रकार से व्यक्त करने की चेष्टा की जाती है। जो नर्तकी जितने रूप दिखा सकती है, वह उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

(च) तिल्लाना–इस नृत्य शैली में संपूर्ण शारीरिक चेष्टाओं को प्रदर्शित करने का सबल माध्यम ''तिल्लाना'' है। यह विशुद्धरूप से नृत्त है, जिसमें अभिनय की कोई स्थान नहीं, तदपि नर्तकी अपने घुंघरूओं की तीव्रलयता और सुंदरतम् अंगस्थितियों से दर्शकों को मुग्ध कर देती है। यह ''तिल्लाना'' उतरभारतीय संगीत के तराना के समान ही है। भारतनाट्यम के कार्यक्रम की समाप्ति पर एक श्लोक गाया जाता है, जिसमें श्रद्धा निवेदन से लेकर धन्यवाद तक सम्मिलित रहता है।

भरतनाट्यम की वेश-भूषा

पुराने समय में नर्तकियाँ कॉजिवरम साड़ी और दक्षिण भारतीय महिलाएँ द्वारा पहने जाने वाले सामान्य आभूषण धारण कर ही नृत्य किया करती थी। राज दरबारों ने नृत्य करनेवाली नर्त्तकियों के कुछ चित्रों में वे विशिष्ट वेशभूषा में भी दिखाई पड़ती है, किन्तु आज जो वेशभूषा भरतनाट्यम की पहचान बन चूकी है, उसकी परिकल्पना श्रीमती

रूक्मिणी देवी अरूण्डेल ने की थी। यह पूरी तरह सिलाई की हुई होती है। गाढ़े रंग की काँजीवरम साड़ी को काटकर इस प्रकार सिलाई जाता है, कि वह पुलंगी साड़ी दिखाई पड़े। कमर से नितम्ब को ढकता हुआ अर्धचन्द्राकार कडका होता है, जिसमें आगे की ओर चुन्नटो से बना पंखा लगा दिया जाता है। वक्ष को ढकता हुआ पल्लू कंधे पर रहता है। बदन पर ब्लाउज रहता है।

भरतनाट्यम में वर्तमान में पहने जाने वाले आभुषणों को वेम्पल ज्वेलरी कहा जाता है। सिर पर बालों का माँग निकालकर टीका धारण किया जाता है। जिसके दोनों ओर चंद्रमा और सूर्य के प्रतीक दो गहने रहते हैं। पीछे की ओर वेणी में मयूर या हंस के आकारों का आभूषण रहता है, जिसे 'राकोडी' कहते हैं। राकोडी ऊपर की ओर उठी रहती है। जिसे पीले और सफेद फूलों से सुशोभित किया जाता है। एक अन्य नक्काशीदार राकोडी भी होती है, जिसे फुलों से सजाने की आवश्यकता नहीं होती है, इसे नागोतु'' कहते हैं। कान के झुमकेदार गहने को 'भातल' कहते हैं। नाक के दोनों ओर ''मकु'' पहना जाता है, बीच में मोती जड़ा बुलक लटकता है। गले में चंद्रहार और नाभी तक लटकती काशीमाला रहती है। कमर पर तगड़ी की तरह पहना जाने वाला एक गहना पहनती है, जिसे ''उठ्डियाणम्'' कहा जाता है। बाँहों में वंगी' नामक बाजूबंद और हाथों में चुड़ियाँ तथा ऊँगलियों में बिछुए भी पहने जाते हैं। इस प्रकार भारतनाट्यम नर्तकी नख-सिखश्रृंगार से पूर्ण सुसज्जित रहती है।

भरतनाट्यम का संगीत

भरतनाट्यम के साथ चलनेवाला संगीत कर्नाटक संगीत का अंश होता है। इसमें अलारिपु, जेथीस्वर व तिलाना की पारंम्परिक रचनाओं के अतिरिक्त अभिनय भाग में तमिल के लोकप्रिय गीतकारों की रचनाएँ प्रदर्शित होती है। इनमें कुछ नाम हैं-जयदेव, सुब्रमण्यम, शुद्धानन्द भारती आदि। इनके गीतों को शंकराभरणम, आनन्द भैरवी, तोड़ी आदि राग-रागिनियों में निबद्ध किया जाता है। लोकप्रिय ताले-रूपकम 6मात्रा, आदितालम-16 मात्रा, मिश्रताल 7 मात्रा, झम्पाताल, चम्पूतालम आदि है।

मृदंगम और मंजीरा इस नृत्य के अभिन्न अंग है। इनके अतिरिक्त वीणा और, नागस्वरम् भी इस नृत्य के साथ बजती रही है, किन्तु आधुनिकता के समावेश के साथ वायलिन या वांसुरी का भी प्रयोग होने लगा है।

भरतनाट्यम् प्रमुख रूप से एकल (सोलो) नृत्य है। इसमें भरतनाट्यशास्त्र तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में वर्णित कृष्ण, चारी, अंगहार हस्तमुद्रायें, और अभिनय भेदों का बहुतागत से प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इसमें आधुनिकता का प्रभाव बहुत सीमा तक बढ़ गया है, फिर भी यह हमारी शास्त्रीय परम्पराओं के बहुत कुछ अपने में समेटे हैं। आधुनिक युग में भरतनाट्यम् नृत्य शैली को परिष्कृत कर उसकी शिक्षा-दीक्षा व प्रचार-प्रसार करने का प्रमुख श्रेय मीनाक्षी सुंदरम् पिल्लई, श्रीमती रूक्मिणी देवी अरूण्डेल व अन्य समसामयिक कलाकारों को है।

कथकली (केरल प्रदेश में प्रचलित)

कथकली नृत्य मालावार का प्रसिद्ध नृत्य नाट्य है। इसका उद्घाटन बारहवीं शताब्दी के आस-पास माना जाता है। कहा जाता है कि कालिकट के राजा जमेरिन को भगवान कृष्ण ने स्वप्न में कृष्ण लीला का नृत्य-नाट्य तैयार करने का आदेश दिया और वरदान स्वरूप एक गोरपंख भेंट किया। तब जमेरिन ने लोकनृत्यों की पृष्ठभूमि पर ''कृष्णा-अत्तम'' अर्थात कृष्ण लीला को जन्म दिया। जब इस नृत्य की प्रसिद्धि बाहर भी फैलने लगी तब पंडोरी राजा कोट्टयकारा ने इस नृत्यदल के अपने प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया। किन्तु जमेरिन के द्वारा मना कर दिए जाने पर उसने अपने यहाँ के नृत्य विशारद नम्बुद्धि ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे ''राम्-अत्तम्'' की लीला को अत्यंत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कराया। इस प्रकार लीलाओं को मंदिर से बाहर नृत्य-नाट्य के रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा सी चल पड़ी।

कथकली नृत्य नाट्य का प्रदर्शन किसी भी खुली जगह में शमियाना लगाकर अथवा उसके बिना भी हो सकता है। चांदनी रात में परंपरागत रूप से होता चला आया है पीतल के बड़े-बड़े दीपाधारों में दीया जलता है और उसी के प्रकाश में नर्तक अपनी कला दिखाते हैं, नर्तकों के प्रवेश करने से पहले दो लड़के एक पर्दे को हाथ में पकड़कर खड़े हो जाते हैं ताकि दर्शकों मे जिज्ञासा व कौतुहल की भावना केंद्रित होती चली जाए। इस पर्दे को '' विशाल'' कहते हैं। पर्दे के पीछे एक छोटी सी तिपाई होती है, जिस पर नर्तक बैठ सकता है या अपने नृत्य में वीर रस के अंश प्रदर्शित करते हुए उसे लेकर अभिनय कर सकता है। हनुमान को जब लक्ष्मण के लिए संजीवनी बुटी लानी होती है और वे पर्वत उठाकर ले चलते हैं उस समय पर्वत का प्रतीक यह तिपाई बन जाती है। हर दृश्य पलटने के समय तश्ला (पर्दे) का प्रयोग किया जाता है।

कथकली नृत्य में आहार्य अभिनय अर्थात रूप-सज्जा या मेकअप अत्यधिक महत्त्व है। प्रायः इस रूप-सज्जा में नर्तकों को 12-12 घंटे लग जाते हैं। रात्रि में उत्सव के लिए दिन से ही तैयारी करनी पड़ती है। कथकली की रूप सज्जा करने वाले अत्यंत कुशल शिल्पी होते हैं। नर्तकों के मुख पर कई बार कई ढंग से लेप चढ़ाए जाते हैं। हर तरह के पात्रों और चरित्रों के लिए अलग तरह का लेप है। देवताओं और सज्जनों के मुख का रंग हरा होना चाहिए, जिसे ''पच्चा'' कहते है। दानवों और राक्षसों का मुंह लाल होता है और उसमें भयकरता लाने के लिए काले रंग का प्रयोग भी करते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री-पात्रों का मुख सफेद स्वाभाविक होता है, किन्तु शूर्पणखा या पुतना जैसी राक्षसियों का मुख राक्षसों के समान रंगों से ही बनाया जाता है। डाकुओं के मुख को काला रंग कर देते हैं। साधुओं और गौण पात्रों का मुख को साधारण से मेकअप होता हे, इन गौण पात्रों को मिनक्क कहते हैं। बिदुषकों का मेकअप प्रायः इस प्रकार किया जाता है कि देखकर अपने आप हंसी आ जाए। कथकली के मेकअप में ''चेठ्ठी'' का अत्यधिक महत्व है। चेठ्ठी यानी चावल के माठ से बने लेप को मेकअप विशेषज्ञ कई पर्तो में एक कान से दुसरे कान तक इस तरह चिपकाते हैं कि वह छोटी दाढ़ी की तरह लगने लगती है। पात्रों के अनुसार पर्तें अलग-अलग ढंग से बनाई जाती है। कथकली नर्तकों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे नृत्य के दौरान अपनी आँखों में एक छोटा-सा बीज दबा लेते हैं जिससे उनकी आँखें फुल जाती है। और गहरे मेकअप के बावजुद भी उनके

नेत्र परिचालन अच्छी तरह दिखाई पड़ते हैं।

वेशभूषा के अंतर्गत कथकली नर्तक गले से कमर तक पूरी अस्तिन के अंगरखे और सुनहरे रंग के गोल लहंगे पहनकर, रत्नमाला और फूलों से सजकर सामने आते हैं। ये लहंगे भी कई पर्तो से बनते हैं ओर उनकी झालर भी उसी तरह काढ़ी जाती है। इन लहंगों के कारण नर्तकों को कठिन पदचालन क्रियाएँ ठीक से देख पाना संभव नहीं होता। सिर पर बड़े-बड़े किरीटों को धारण किया जाता है। इन किराटों में पीछे का प्रभामंडल भी साथ ही जुड़ा रहता है। तीन फिट व्यास तक के प्रभा मंडलों को धारण कर नृत्य किया जाता है।

कथकली नृत्य प्रारंभ होने के पूर्व उसकी घोषणा नगाड़े पीटकर की जाती है जिसे ''केली कोट'' कहा जाता है। लोगों के आ जाने पर पर्दा हटने के पहले उसके पीछे से वंदना और संगीत का कार्यक्रम प्रारंभ हो जाता है। इसे ''शोडयम'' और ''वंदना-स्लोकम्'' कहते हैं। शोड्यम पर्दे के पीछे का नृत्य है। इसमें नृत्त भाव की अधिकता रहती है। शंख, नगाड़ा और मृदंग घोष के साथ ''पुराप्पड्डू कार्यक्रम प्रारंभ होता है, जिसमें प्रमुख नायक अपने तेजवान सहायकों के साथ दर्शकों के सामने आता है। इसके साथ ही नृत्य-नाट्य की मुल कथा वस्तु आरंभ हो जाती है। ''शिरोनत्तम'' कथकली का बड़ा रोमांचक अंश माना जाता है, जिसमें उद्धत पात्रों द्वारा ताण्डव का विशष्ट प्रदर्शन होता है। इसी प्रकार का एक अंश स्त्रियों के लिए भी होता है जिसे ''कुम्मी'' कहते हैं। कथकली नृत्य में रामायण और महाभारत के ही छोटे अंश प्रदर्शित किये जाते हैं। कार्यक्रम के अंत में भरतनाट्यम की तरह मंगलश्लोक पढ़े जाते हैं।

कथकली में नृत अंग कम होता है और अभिनय अंग की प्रधानता रहती है। इसमें संकतों और प्रगति पर बल देकर वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक किया जाता है। कथकली नर्तक पूर्णतया दक्ष होने पर सभी मुद्राओं का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति में करते हैं। अतः कथकली नृत्य की शिक्षा बहुत कठिन होती है।

कथकली नृत्य के बाद्य-वृन्द में प्रायः चार नगाड़े, जिन्हें ''चैंडई'' कहा जाता है, बांसुरी, मंजीरे तथा मुछलम होते हैं। इनके अतिरिक्त एक गायक होता है जो लीला गान करता है। नगाड़े इस नृत्य के प्राण के समान है। हर नर्तक उन्हें बड़ा ही पवित्र समझता है और नृत्य आरंभ करने से पूर्व उन्हें छुकर प्रणाम करता है।

कथकली भारत का सबसे रोमांचकारी नृत्य-नाट्य है। कवि वल्लशौल ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसकी शिक्षा-दीक्षा व प्रचार-प्रसार के लिए केरल कला मंडलम् की स्थापना कर महत्वपूर्ण कार्य किया है। श्री मती रागिनी देवी तथा गुरु गोपीनाथ ने मलाबार को इस परम्परागत नृत्य को विश्व के अनेक देशों मे प्रदर्शित कर पर्याप्त यश अर्जित किया है।

मणिपुरी नृत्य (मणिपुर)

मणिपुर की सम्पूर्ण धरती, मानो नृत्य करती सी लगती है। ऊंची-ऊंची पहाड़ियों से घिरा हुआ आंगन जैसा यह प्रदेश प्रकृति की रंगशाला का मंच ही लगता है। वहाँ के निवासियों के अनुसार भी, मणिपुर की स्थापना ही इसलिए हुई थी कि स्वर्ग के देवता वहाँ पर अपना नृत्य कर सके। इस संबंध मे एक विचित्र लोककथा प्रचलित है कि एक बार माहारास में कृष्ण के साथ गोपियाँ नृत्य कर रही थी । नटराज शिव ने उस नृत्य को देखने की अनुमति मांगी। तब कृष्ण ने केवल इतनी अनुमति दी कि वे रासलीला की ओर पीठ कर के खड़े हो सकते हैं और मात्र सुन सकते हैं। शिव ने वैसा ही किया। किन्तु महराज की नृत्यलीला, घुंघरू, मृदंग और बांसुरी की सम्मिलित ध्वनियों का उन पर कुछ ऐसा जादु हुआ कि वे अपना वचन भूल गये । शिवजी ने हिमालय लौटकर तत्काल ही पार्वती के साथ रास रचाने का निश्चय किया और उसके लिए इसी मणिपुर का स्थान चुना। उसी क्षण उन्होंने 'पेंगा' और पेना अविष्कृत किया, जो इस नृत्य के साथ बजाए जाते है। शेषनाग की मणि से सारा प्रदेश आलोकित हो उठा, इसी कारण इसे मणिपुरी कहा जाने लगा।

मूल रूप से अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ही मणिपुर निवासी आजतक नृत्य करते चले आ रहे हैं। उनका प्राचीनतम् नृत्य 'लाई हरोबा' है, जो शिव पार्वती द्वारा सर्वप्रथम किया गया था। देवताओं की प्रसन्नता के लिए 'लाई हरोबा नृत्य वर्ष में एक बार नई फसल रोपने के समय अप्रैल-मई के आस-पास किया जाता है। वैसे यह एक चिरन्तम नृत्य है, जो अन्य अवसरों पर भी प्रदर्शित होता रहता है। लाई-हरोबा नृत्य वस्तुतः ग्राम देवता को समर्पित रहता है। ये देवता 'उमेड़-लाई' कहलाता है, जो मणिपुर के आदि देवताओं में से है।

पुजारी 'मैबा' और पुजारिणी मैबी कहलाती है। मणिपूरी नृत्य के विकास में इनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'लाई हरोबा' बहुत सीमा तक एक धार्मिक क्रिया है जिसमें नृत्य-तत्वों की प्रधानता रहती है, जो दर्शकों को बांध रखते हैं।

15वीं शताब्दी के आसपास मणिपुर क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। उसी के साथ रास लीला तथा रास नृत्य ने नए रूपों में मणिपुर की धरती पर प्रवेश किया। आज भी धार्मिक पर्वों पर कीर्तन का विशेष आयोजन किया जाता है। इन कीर्तनों में मंजीरे, करताल और ढोल का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता है। अर्द्धवृत्ताकार मण्डलों में घुम-घुमकर वे नृत्य.....कीर्तन करते हैं। नर्त्तकों के चंदन-चर्चित माथे श्वेत पगड़ियो से सुशोभित रहते हैं। धोती, उतरीय और पगड़ी उनका वेषभूषा है। अपने बाद्ययंत्रों को बजाते हुए ये कीर्तनकार जिस प्रकार नृत्य करते है वह एक अद्भुत रस की सृष्टि कहता है। करताल चन्नन, पुड़चलन आदि इस नृत्य के प्रभावशाली अंश है। चलन-घटन के नाम से प्रसिद्ध ये नृत्य वैष्णव संस्कृति की अपूर्व देन है। इसी परंम्परा में एक विशेषकीर्तन नृत्य 'रासेश्वर' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह मणिपुर के राजपरिवारों में प्रचलित है। विशेष रूप से उस परिवार के सदस्यों के मृत्यु के अवसर पर यह कीर्तन होता है। इसमें विवाद और करुणा की भावना उपेक्षाकृत परिलक्षित होती है।

मणिपुर का सबसे प्रधान व लोकमान्य नृत्य रासलीला' है। यह रासलीला नृत्य, भारतीय 'आपेरा' का अपूर्व उदाहरण है। इसमें संवाद, अभिनय आदि है। किन्तु नृत्य की प्रमुखता रहती है। रासलीला होता है। कृष्ण का अभिनय 10-12 वर्ष का आयु तक कोई बालक ही कर सकता है। किन्तु राधा व उनकी सखियों का अभिनय, प्रवीण नर्तकियां ही करती है। रासलीला चार प्रकार की होती है-

1. वसन्तरास 2. कुंज रास 3. महारास 4. नित्यरास

''वसंत' रास वैसाख मास में आयोजित होता है, जिसमे रूठी हुई राधा को कृष्ण द्वारा मनवाने की पूर्ण प्रयास है। कृष्ण राधा के समुख आत्म समर्पण करते हैं, और राधा उन्हें क्षमाकर पुणः स्वीकार कर लेती है। कुंजरास आश्विनमास में होता है। यह राधा और कृष्ण के संयोग शृंगार का नृत्य है। इनमें उनका विरह नहीं है। कुंजों में राधा और कृष्ण का विभिन्न रूपों में विहार प्रदर्शित करना इस रासनृत्य की अपनी विशेषता है। 'महारास' कार्तिक मास में होता है। इस नृत्य में राधा और कृष्ण का विरह है। राधा को त्यागकर कृष्ण चले जाते हैं और अंत में

पुनः कृष्ण की प्राप्ति हो जाती है। 'नित्य रास' किसी भी समय किया जा सकता है। यह राधा और कृष्ण के सतत् विरह और मिलन को प्रदर्शित करता है। आत्मा और परमात्मा का विछोह तथा आत्मा द्वारा उस परम तत्व को पाने का प्रयत्न एवं उसी में समर्पित हो जाने की भावना इन सभी लीलाओं कि मुल प्रेरणा रही है।

रासलीला नृत्य की नर्तकों कि वेशभुषा बहुमुल्य है, जिसे देखकर मन ठगा सा रह जाता है। कहा जाता है कि मणिपुर के महाराज जयसिंह, जो मणिपूर रासलीला के जनक माने जाते हैं। इस वेशभूषा के भी आविष्कर्ता है। रासलीला की नर्तकिया राधा व गोपिया एक गोल घुमावदार लहंगा पहनती है। यह लहंगा प्रायः लाल या हरा रंग का होता है। नीचे दक्तीया बेंच की छड़िया लगाकर लहंगों को एक दिशा में ही घुमने के लिए सेट कर दिया जाता है। लहंगे के ऊपर एक छोटी-सी घघरीया रहती है। जो लहंगे को आधी दूर तक ढक लेती है। इन लहंगों और घघरियों में अबरक के छोटे-छाटे असंख्य टुकड़े लगे रहते हैं जो प्रकाश में जगमगाने लगते हैं। छोटी और कसी हुई चोली भी इसी प्रकार मटकीले रंगों और गोटे-जरी के काम से चमकते रहती है। इन सब पर एक महिन ओढ़नी लटकी रहती है, जो नर्तकी का मुख भी ढके रखती है, किन्तु पारदर्शी होने के कारण उसके मुख का हर भाव दिखाई पड़ता हैं। विविध प्रकार के लेपों ओर चंदनों से उसका मुख रंगीन रहता है। केश सज्जा भी शृंगार आदि विभिन्न प्रकार के रसों में अलग-अलग प्रकार से बनाई जाती है। वसंत रास मे जूड़ा पीछे की तरफ, महारास में सिर के मध्य में तथा कुंज रास में वाई तरफ बनाई जाती है। कृष्ण का वेशभूषा मोर-मुकुट युक्त पिताम्बरधारी, मुरली, बैजयन्ती माल सहित ही दिखाई जाती है।

मणिपुर की धरती ही नृत्यमय है। वहां उपरोक्त नृत्यों के अतिरिक्त एक 'लघुरास' भी होता है। जिसमें गोपियाँ कृष्ण के साथ रास रचाकर अपना प्रेम निवेदन करती है। चैतन्य महाप्रभु की जीवन लीला पर आधारित 'गौरलीला' होती है। कार्तिक मास में गौष्ठ लीला बड़े धुम-धाम से मनायी जाती है। कालियदमन' की लीला भी प्रायः देखने को मिलती है। दशहरे के दिनों में नटों के अलावा वहां 'तबला-धांगबी' आदि बहुत से लोकनृत्य भी है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मणिपूर नृत्य को परिमार्जित कर उसे लोकप्रिय बनाने की दशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन दिनों हमारी राष्ट्रीय सरकार द्वारा वहाँ मणिपुरी नृत्य अकादमी की भी स्थापना की गई हैं जहां इस नृत्य शैली की परम्परागत शिक्षा की समुचित व्यवस्था है।

मोहिनीअट्टम

मोहिनी अट्टम केरल प्रदेश का अत्यन्त ही सुललित भावपूर्ण औरश्रृंगार रस प्रधान नृत्य होती है। यह लास्य अंग प्रधान स्त्रियोचित नृत्य है। इसके उद्भव की कथा भगवान विष्णु द्वारा समुद्र मंथन के समय मोहिनी रूप धारण करने से जोड़ी जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार, जब तमिलनाडु में मुस्लिम शासन फैलने लगा तब वहाँ की कुछ देवदासियाँ केरल उठकर चली गई और उन्होंने ही इस नृत्य शैली का वहाँ विकास किया। मोहिनी अट्टयम के नृत्य प्रदर्शन का प्रारम्भ चोलकेटू से होता है। इसमें देववंदना के रूप में शिव, पार्वती विष्णु या भगवती की अराधना में स्तुति नृत्य प्रस्तुत किया जाता है जिसमे नर्तकी ताल लय के साथ अंग संचालन करते हुए सौन्दर्य व आनन्द की सृष्टि करती है। इसके पश्चात् क्रमशः जातिस्वरम् वर्णम्, शब्दम्, पद्म तिल्ललाना प्रस्तुत किए जाते हैं। अंत में पंदाद्यम किया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के गेंद खेलने का भाव प्रदर्शित होता है।

मोहिनी अट्टम के गीत संगीत भरतनाट्यम से सर्वथा भिन्न होता है। इस नृत्य शैली के बाद्य यंत्र वीणा, मृदंग, बाँसूरी है। नृत्यांगनाएँ सिर पर बायीं ओर कनपट्टी से ऊपर जूड़ा बनाती है जिसे ताजे सुगंधित फूलों से सजाया जाता है। मांग पर सुनहरा टीका, पल्लदूदार सफेद साड़ी तथा इसके चुन्नरदार घेरे होते हैं। वर्तमान युग में मोहिनी अट्टयम को प्रचारित प्रसारित करने में पद्मश्री डॉ० कनक रेले का महत्वपूर्ण योगदान है। इस शैली के अन्य प्रसिद्ध कलाकार है—शांताराव, गीता नायर, मृणालनी साराभाई, शिवाजी भारती।

कुच्चीपुड़ी

कुच्चीपुड़ी वैष्णव भक्ति भावना से ओत-प्रोत आंध्रप्रदेश का नाट्यनृत्य है जो अब धीरे-धीरे शास्त्रीय नृत्य शैली के रूप में जनमंच पर प्रतिनिधित्व कर रहा है। इस नृत्य के कृष्ण-माधवी, रूक्मिणी कल्याण परकायप्रवेशम् इत्यादि प्रमुख नाट्य नृत्य है। इस नृत्य का सबसे लोकप्रिय नृत्य-नाटिका 'भामाकलापम' है जो सत्यभामा के चरित्र पर आधारित है। इसके वाद्य-वृन्द भी सीमित होते हैं जिसमें गायकों के अतिरिक्त एक मृदंग या घटम्वादक एक वीणा या नागस्वरम् वादक और एक मंजीरा वादक होता है। इस नृत्य में प्रदर्शन से पूर्व प्रारंभिक वंदना पर्दे के अंदर सम्पन्न होती है। तब सूत्रधार प्रवेश करता है, ईश्वर, गुरू और सभासदों को प्रणाम कर शिव की स्तुति में मंगलाचरण करता है। इस शैली में सबसे उल्लेखनीय शव्दम् नृत्य है। इसमें वर्णनात्मक श्लोक, गीत व नृत्य के बोलों के' साथ

पौराणिक कथानक को अकेले नर्तक या नर्तकी मंच पर करते हैं। यह नृत्य स्वतंत्र लचकदार तथा खिलता हुआ है। कुच्चीपुड़ी लास्य और तांडव का समन्वित रूप है। इस नृत्य की प्रमुख नृत्यांगना है–इन्द्राणी रहमान, स्वप्न सुंदरी, राधा-राजा रेड्डी इत्यादि। इस नृत्य को शास्त्रीय नृत्य शैली की प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय श्री सितेन्द्र योगी जी को जाता है।

प्रश्न

1. नृत्य किसे कहते हैं ?
2. भारतीय नृत्य को कितनी श्रेणियों में बाँटा गया है?
3. प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों के प्रकारों के नाम बताएं।
4. मणिपुरी तथा भरतनाट्यम शैली की तुलनात्मक विवेचना करें।

अभ्यास के लिए–

1. परिधान एवं वेशभूषा तथा वेश सज्जा के आधार पर नृत्य की पहचान करना।
2. वाद्ययंत्रों के साथ नृत्य का पद संचालन करना।

❑

कथक नृत्य

उद्‌भव एवं विकास :

भारत की प्राचीन परम्परागत शास्त्रीय नृत्यों कीश्रृंखला में कथक नृत्य का प्रमुख स्थान है। यह सम्पूर्ण उत्तर भारत की यह एकमात्र प्रतिनिधि शास्त्रीय नृत्य शैली है। ताण्डव और लास्य के उपरान्त कुशीलव तथा चारण संज्ञक नटों द्वारा स्वतंत्र शैली के रूप में विकसित भारतीय नृत्यकला का यह प्रथम नृत्य रूप है जिसमें प्रत्येक युग की सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार, रंगारंग स्वरूप धारण कर विकास प्राप्त किया है। यह नृत्य भारतीय इतिहास के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान पतन का प्रत्यक्षदर्शी है। इसलिए इसमें इतनी विविधता है, उन्मुक्तता है, ताजगी है। वस्तुतः कथक नृत्य अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व बोध के लिए 'कथक' शब्द पर ही अवलम्बित है। संस्कृत, पाली, प्राकृत भाषा साहित्य व शब्दकोश में प्राप्त अर्थ परम्परा कथक शब्द को मुख्यतः तीन विशेषताओं से सम्बद्ध करती है कथा, अभिनय तथा उपदेश। यदि तीनों अर्थों को सम्मिलित रूप से ग्रहण किया जाय तो 'कथक' शब्द पर ही अवलम्बित है। यदि तीनों अर्थों को सम्मिलित रूप से ग्रहण किया जाय तो कथक शब्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस अर्थ में प्रकट होगा कि कथक वह व्यक्ति विशेष है जो लोकोपदेश के लिए अभिनय के माध्यम से कथा प्रस्तुत करें। यही 'कथा करोति सः कथक' कथक शब्द को परिभाषित करती है।

संस्कृत शब्दकोश में 'कथक' का एक और पर्यायवाची शब्द 'कुशीलव' प्राप्त होता है जो इन कथकों के उद्‌भव की ओर संकेत करता है। कहा जाता है कि भगवान राम के दरबार में लव और कुश ने महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण गाकर जनमानस को प्रभावित कर अपने छीने हुए अधिकार को प्राप्त किया था। तब लवकुश द्वारा दिखाए गए संगीतमय कथा को कथकों ने अपना लिया और घूम-घूम कर उसी रूप में अपनी आजीविका चलाने के लिए कहने लगे। ये कथक लव कुश की पावन समृति में कुशीलव कहे जाने लगे। इस प्रकार नाट्य कथा के प्रचार हेतु कुशीलव वृति के जनक होने के कारण महर्षि वाल्मीकि ही प्रथम कथक है।

भारतीय मान्यता के अनुसार देवताओं के अनुरोध पर पंचम वेद अर्थात नाट्य वेद की रचना ब्राह्म जी ने की ताकिं प्रत्येक वर्ग के लोग इसका आनन्द उठा सके। इस नाट्यवेद को शिक्षा सर्वप्रथम भरतमुनि से हुई। भगवान शंकर ने इसमें तांडव तथा लासय अंग को जोड़ा। इस प्रकार नाट्य में अभिनय, गीत तथा नृत्य का सुन्दर समन्वय हो गया। रंगशालाओं की स्थापना हुई और पुराणों से संबंधित कथाओं की नाट्य के रूप में किए जाने लगे। विद्वानों के अनुसार, क्रमशः समाज के सुसंस्कृत होने पर बुद्धिमान लोगों ने समाज से लोक मनोरंजन तत्व निकालकर कलात्मक सिद्धांत को एकतित किया जो आगे चलकर शास्त्र का रूप लेते चले गए।

किसी वाक्य को अभिनय द्वारा प्रकट करके उसमें रस की उत्पन्ति होती है तो उसे नाट्य कहते है। ताल एवं लय के साथ हाथ-पैर चलाने को नृन्त कहते है। जब नाट्य और नृन्त दोनों मिल जाते है तो उसे नृत्य कहते हैं। जब कोई भी शब्द का अभिनय ताल एवं लय से किया जाए तो वह नृत्य कहलाता है। कथक नृत्य में जब पैरों द्वारा भिन्न-भिन्न लय एवं लयकारियों दिखाई जाती है तो वह नृन्त कहलाती है और जब भाव या अभिनय भी जुड़ जाता है तो उसे नृत्य कहते हैं। इस प्रकार कथक, नृत्त और नृत्य दोनों का मिला हुआ रूप है।

जिस नृत्य में वीर रस की प्रधानता होती है उसे तांडव नृत्य कहते हैं। एक कथा के अनुसार, त्रिपुरासुर राक्षस का वध करने के लिए भगवान शंकर ने जो क्रोध-भरा नृत्य किया उसे तांडव कहा जाता है। तांडव नृत्य पुरुषों के लिए अधिक उपयुक्त है क्योंकि-उसमें ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन होता है जो स्त्रियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

स्त्रियों के लिए लास्य नृत्य अधिक मनोरंजक और उपयुक्त होता है। वैसे आधुनिक काल में तांडव और लास्य पुरुष एवं स्त्री दोनों कलाकारों द्वारा की जाती है । शिव के गण तंडु ने ऋषियों को तांडव की शिक्षा दी तो पार्वती ने वाणासुर की पुत्री उषा को लास्य नृत्य सिखाया। लास्य के सम्पूर्ण अंगों के प्रदर्शन हेतु श्रीकृष्ण ने रास मंडल की स्थापना की। रास नृत्य को 'हल्लीसक' भी कहते हैं। इसमें गीत, नृत्त नृत्य अभिनय सभी तत्त्वों का सम्मिश्रण होता है।

कथक का अर्थ है 'कथा कहनेवाला प्राचीन काल में कथकों द्वारा ही मंदिरों में पौराणिक कथाएँ होती थी। इसके बाद कीर्तन भजन इत्यादि हुआ करता था जिसमें भरत या नट जाति के लोग नृत्य करते थे। धीरे-धीरे यही नट लोग स्वयं कथा कहकर नृत्य के माध्यम से जगह-जगह जाकर लोगों को कहानियाँ सुनाते और जीविकोपार्जन करते थे। अतएव यही लोग कत्थक कहलाने लगे।

समय के परिवर्त्तन के साथ-साथ कथक नृत्य के स्वरूप में भी परिवर्त्तन होते चले गए। मध्यकाल में मुसलमानी साम्राज्य स्थापित हुआ। ईश्वर-उपासना की भारतीय कला, अब राजाओं के मनोरंजन के साधन बनती चली गई। बड़े-बड़े नृत्याचार्यों को महल में नृत्य की शिक्षा देने की नौकरी दी गई। नर्त्तक और नर्त्तकियों को शराब का प्याला संतुलित रूप में लेकर राजा की आज्ञा का पालन करना होता था। इस स्थिति में नृत्य करने से पैरों के विविध चालों पर नियंत्रण होने लगा और कथक नृत्य में बढ़ गई। नृत्य के पूर्व भगवान की स्तुति, सलामी ने ले लिया। इस प्रकार मुगलकाल में कथक नृत्य का स्वरूप काफी बदल गया। कई चित्रों में नर्त्तकों को दरबारियों और राजाओं के समक्ष नृत्य प्रस्तुत करते हुए उल्लेख किया गया है। संगीत प्रेमी राजाओं ने नृत्यकारों को अपने दरबार में विशेष रूप से प्राश्रय दिया। भक्ति प्रधान गीतों का स्थान श्रृंगारिकता ने ले लिया। कई नृत्याचार्यों को तो कोठों पर नियुक्त किया गया ताकि वे वेश्याओं को भी पारंगत कर सकें। नृत्य और संगीत दोनों का रूप विकृत हो गया। कथक नृत्य का अपना अलग शास्त्र बन गया। भारतीय नृत्य के समस्त पारिभाषिक शब्द उर्दू में बन गए क्योंकि मुसलमान शिष्य शिष्याओं को उन्हें बोलने में कठिनाई होती थी। मुगल नबाब वाजिदअली शाह संगीत प्रेमी शासक थे। उनके दरबार में नृत्य और संगीत का दूसरा जीवन प्राप्त हुआ। सम्राट स्वयं कृष्ण बनकर रास नृत्य करते थे।

एक किंवदती के अनुसार, इलाहाबाद के हंडिया जिला निवासी श्री ईश्वरीप्रसाद मिश्र जी को भगवान श्रीकृष्ण ने स्वप्न में कथक नृत्य का पुनुरुद्धार करने का आदेश दिया। ईश्वरीप्रसादजी इस कार्य में जुट गए और अस्सी वर्ष की आयु में उन्होंने इस कार्य को पूरा कर लिया। उन्होंने अपनें सुपुत्रों को भी नृत्य की शिक्षा दी और अपने इस कार्य को आगे बढ़ाया। इनके वंशजों में प्रकाश जी अपने भाइयों के साथ लखनऊ आ गए। और नबाब आसिफुद्दौला के दरबारी नृत्यकार नियुक्त हुए। इस समय कथक नृत्य का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। प्रकाशजी के पुत्र महाराज ठाकुर प्रसाद द्वारा इस नृत्य को 'कथक' नटवरी नृत्य की संज्ञा दी गई। बिन्दादीन-कालिका प्रसाद जी की जोड़ी ने मिलकर इस नृत्य की ख्याति देश भर में फैलाई। बिन्दादीन महाराज ने पन्द्रह सौ ठुमरियों की रचना की। धीरे-धीरे लखनऊ में नृत्थकारों ने कथक के घराना को स्थापित किया। यहीं से कथक नृत्य का घराना लखनऊ घराना का विस्तार हुआ। कुछ नृत्यकारों ने जयपुर में बसकर कथक का प्रचार-प्रसार किया और जयपुर घराना को विस्तार किया। कथक का तीसरा घराना बनारस घराना है। अपने-अपने घरानों की विशेषता के साथ इस नृत्य की ख्याति पूरे देश में फैल गई।

कथक नृत्य अपने प्रस्तुतिकरण में जितना स्वतंत्र है उतना शायद कोई दूसरी नृत्य शैली नहीं । प्रत्येक कथक नर्त्तक का अपना अलग अंदाज होता है, वह उसी अंदाज में नृत्य प्रस्तुत करता है और अपनी क्षमता से कार्यक्रम का बखूबी संयोजन करता है। कथक नृत्य का दो पक्ष होता है –नृत्त और नृत्य । कथक में पहले थाट, आमद सलामी तोड़े ततकार आदि की प्रस्तुति की जाती है तदुपरान्त भाव या अभिनय की प्रस्तुति होती है। घुँघरू और पैरों की तैयारी का काम जितना कथक नृत्य में होता है उतना किसी और नृत्य शैलियों में नहीं होता है। तबला या पखावज से इस नृत्य में संगत की जाती है और तबले के बोल को घुँघरूओं के माध्यम से बखूबी निकाली जाती है। इस नृत्य में चक्कर का प्रयोग अद्वितीय है। भ्रमरी के प्रकार जैसे–चक्री, अर्द्धचक्री इत्यादि इस नृत्य की विशेषता है। ठुमरी या भजन पर नर्त्तक भाव अभिव्यक्ति करते हैं।

कथक नृत्य की वेशभूषा पर मुगल काल का प्रभाव अधिक है। वर्त्तमान समय में नर्त्तक चूड़ीदार पैजामा कुरता या अँगरखा पहनते हैं। स्त्रियों की वेशभूषा लहंगा–दुपट्टा या मुगल अंदाज में करती और चुड़ीदार होती है। वेश सज्जा और आभूषण भी परिधान के अनुरूप ही होता है ।

इस प्रकार कथक नृत्य सम्पूर्ण उत्तर भारत का प्रतिनिधि शास्त्रीय नृत्य है। भारतीय इतिहास में समय–समय पर राजनीतिक सामाजिक बदलाव के कारण सांस्कृतिक परिवेश में भी बदलाव हुआ और इसका असर नृत्यकला पर भी पड़ा। आधुनिक समय में कथक में भी नित्य नए प्रयोग हो रहे है। पं० शम्भू महाराज, पं० बिरजू महाराज, पं० गोपी कृष्ण, सितारा देवी, दमयन्ती जोशी, मधु मिश्रा, डॉ0 शोभना नारायण आदि प्रसिद्ध कथक नृत्यकार हैं।

प्रश्न

1. कथक नृत्य मुख्यतः किस प्रदेश का शास्त्रीय नृत्य है ?
2. कथक नृत्य के क्रमिक इतिहास का वर्णन करें।
3. कथक में कौन–कौन से वाद्य यंत्र बजाए जाते है ?
4. किस नर्त्तक ने कथक को नटवरी नृत्य की उपाधि से संबोधित किया ?
5. कथक के पाँच प्रसिद्ध नृत्यकार का नाम बताएँ।

ओडिसी नृत्य का इतिहास

प्राचीन काल में उत्कल प्रदेश जिसे वर्त्तमान में उड़िसा कहते हैं यहाँ जगन्नाथ मंदिर है जो विश्व-प्रसिद्ध है, देवदासी और महारी नृत्य का प्रचलन मंदिरों में था। प्रातः काल भगवान की आरती के समय भगवान के सोलहों सेवा, शृंगार के समय नृत्य की प्रस्तुति की जाती थी और आज तक भी की जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु का आगमन जब उत्कल में हुआ, उनके सत्कार एवं स्वागत में गोटिपुआ नृत्य की प्रस्तुति की गई थी। गोटिपुआ का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है, गोटि = एक और पुआ = लड़का। यह नृत्य उस समय बहुत प्रचलित था, शरीर का विशेष रूप से संचालन इस नृत्य की विशेषता थी जो आधुनिक काल में भी है। "गोटिपुआ" नृत्य की शुरूआत "राय रामानंद देव" ने की थी, "राजा प्रताप रूद्र" के कार्य काल में इस नृत्य की बहुत ख्याति हुई इसका प्रचलन चरम सीमा पर हुआ है मंदिर में झूलन यात्रा चन्दन यात्रा और रथ यात्रा इत्यादि में गोटिपुआ नृत्य की प्रस्तुति की जाती थी। देवदासी इन बाह्य स्थानों पर नृत्य नहीं कर सकती थीं। देवदासी नृत्य दो भागों में विभक्त था प्रथम (भीतर गऊणी) द्वितीय (नाचनी) नाचनी नृत्य जिसे भगवान की सेवा में करते थे बाद में सरकार ने इसे प्रतिबन्धित कर दिया परन्तु भीतर गऊणी नृत्य सेवा का प्रचलन रहा किन्तु यह नृत्य (देवदासी) केवल मंदिर प्रागंण में ही कर सकती थी यह आदेश था।

ओडिसी नृत्य का सबसे बड़ा प्रतिष्ठान उड़िसा में उत्कल संगीत महाविद्यालय है। आज ओडिसी नृत्य अपना नवीन रूप लेकर आया है भाव भंगिमा शरीर का परिचालन लगभग वैसा ही है सिर्फ 'गोटिपुआ' नहीं आज स्त्रीयाँ ही अपने रूप में तथा पुरुष नर्त्तक अपने वास्तविक रूप में नृत्य करते हैं।

ओडिसी नृत्य की विशेषता है कि इसमें लास्य बहुत अधिक है, भाव बहुत है, त्रिभंग और चौक मुद्रा इसकी प्रमुखता है। शरीर को तीन स्थानों से मोड़ कर खड़े होते हैं प्रथम–घुटने को थोड़ा झुकाकर द्वितीय–कमर को बाईं ओर कर खड़े होते हैं।

तृतीय–गर्दन भी बाईं ओर झुकी होती है।

चौक में पैर फैला कर घुटने को थोड़ा मोड़ कर हाथ को 90° के कोण में फैला कर खड़े होते हैं। नर्तकी मंच पर एक बार नृत्य प्रारंभ करती है तो बीच में कहीं दम लेने की गुंजाइश नहीं होती। एक विभाग (आईट्म्) समाप्त करके ही क्षणिक रूक सकती है। पूरे नृत्य में घुटना आधा मुड़ा होता है सीधे खड़े होकर नहीं बल्कि थोड़ा बैठ कर ही नृत्य किया जाता है। वेश भूषा – नृत्य का पोशाक है सम्बलपुरी साड़ी जिसे धोती की तरह बाँधी जाती है वर्त्तमान में बना बनाया पोशाक आता है।

जेवर–चाँदी का विशेष बनावट का जेवर पहना जाता है माथे पर टीका तथा टायरा, कान में पूरा कान ढका और झुमका गले में सटा हार जिसे चिक भी कहते हैं। फिर एक लम्बा हार, बाजुबन्ध हाथ में बाला अँगूठी तथा कमरधनी जिसे 'कमर पेटी' कहते है इसकी बनावट बहुत विशेष रूप की होती है। यह करीब एक बिता चौड़ा होता है तथा लाल डोरी लगी होती है जिससे यह बाँधा जाता है। पाँव में (चौमुहाँ) घुँघुरू बँधे होते हैं। बालों में जूड़ा बनाया जाता है। जूड़े में शोले का फूल (शोला पानी में पाया जाता है जिससे बड़ी सुंदर आकृति के फूल बनते हैं) का गजरा लगाया जाता है और गजरा के ऊपर लम्बाई में फूल लगाया जाता है, मुख की सुन्दरता में बिन्दी की महत्ता बहुत अधिक है। आँखों की सजावट भी सुंदर तरीके से की जाती है। इसी प्रकार पुरुष नर्तक एक सुन्दर धोती शरीर पर केवल एक अंगवस्त्रम जिसे अंगरखा भी कहते हैं कमर पेटी लगाते हैं, गहना पहनते हैं, बाल में कुछ नहीं किया जाता, पाँव में घुँघरू पहनते हैं। ओडिसी नृत्य में वाद्य यंत्रों में पखावज, हारमोनियम बाँसुरी तथा वायलिन का उपयोग होता है।

प्रत्येक शास्त्रीयनृत्य का भाग या आइटम होते हैं, उसी प्रकार ओडिसी जो उड़िसा का शास्त्रीय नृत्य है इसके भी भाग हैं जो इस क्रम में बंधे है इसकी प्रस्तुति भी क्रम से ही होती है–

(1) मंगला चरण

(2) वटु (स्थाई)

(3) पल्लवी

(4) अभिनय

(5) मोक्ष

(1) मंगला चरण–यह प्रथम भाग है जो नाम से ही प्रतीत हो रहा है। इसमें सर्वप्रथम भूमि प्रणाम तथा सभा प्रणाम किया जाता है।

(2) चटु–जिसे स्थाई भी कहते हैं–इसमें नर्त्तकी बड़े ही खूबसूरत ढंग से सारे शृंगार तथा वाद्य यंत्रों को बजाते हुए मंच पर दर्शाती है। इसमें अभिनय का स्थान कहीं नहीं होता, भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु इस नृत्य को किया जाता है।

(3) पल्लवी–यह अत्यन्त सुन्दर नृत्य है, लास्य से परिपूर्ण यह राग पर आधारित होता है उस राग का वर्णन किया जाता है इसमें युगल बन्दी भी होता है। गल्लवी नृत्य में आरभी पल्लवी, बंसत पल्लवी और कल्याण पल्लवी प्रमुख है।

(4) अभिनय–यह एक अति प्रमुख भाग है, अभिनय में नर्तकी एकल ही किसी भी पौराणिक कथा या राधाकृष्ण का प्रेम विरह आदि बड़े आकर्षक रूप से दर्शाती है। अभिनय के अन्तर्गत ही दशावतार श्री जंयदेव रचित जिसे गीत गोविन्द से उद्धत किया गया है।

(5) मोक्ष–अर्थात जीवन के बन्धन से मुक्ति, नाम से ही परिलक्षित होता है, यह ओडिसी का अन्तिम आइटम होता है, नर्तकी मंच पर द्रुत गति से नृत्य करती है और अन्त में मोक्ष की मुद्रा में मंच पर ही स्थिर हो जाती है।

ओडिसी नृत्य भी अन्य शास्त्रीय नृत्यों की भाँति गुरु शिष्य परम्परा से परिपूर्ण है। इसके प्रमुख गुरुओं के नाम इस प्रकार है–

(1) गुरु पंकज चरण दास

(2) पद्मभूषण गुरु केलुचरण महापात्र

(3) गुरु देव प्रसाद दास

(4) गुरु श्री मायाधर राउत

ओडिसी नृत्य में विश्वस्तरीय स्तर पर कई नृत्यांगनाएँ हुई हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं–

(1) श्रीमती इन्द्राणी रहमान
(2) श्रीमती संयुक्ता पाणिग्रही
(3) श्रीमती सोनल मानसिंह
(4) श्रीमती प्रोतिमा बेदी
(5) श्रीमती माधवी मुद्गल
(6) मिनाक्षी शेशाद्री
(7) कुम-कुम दास
(8) डॉ० मिनती मिश्रा
(9) शेरोन लवेन

ये सभी नृत्यांगनाएँ अति सम्मानित एवं ख्याति प्राप्त हैं। ओडिसी नृत्य का प्रचार-प्रसार पूरे विश्व में हो रहा है। लगभग सभी राज्यों में इसकी नृत्यांगनाएँ उभर रही है।

प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. उड़िसा का प्राचीन नाम क्या था ?

2. गोटिपुआ नृत्य किसे कहते थे ?

3. प्रारंभ में ओडिसी नृत्य का क्या स्वरूप था ?

4. ओडिसी नृत्य में कौन-कौन सा वाद्ययंत्र उपयोग में लाया जाता है ?

5. ओडिसी का नृत्य सबसे बड़ा प्रतिष्ठान (Intute) कहाँ है तथा किस नाम से प्रसिद्ध है ?

6. इस नृत्य के कितने विभाग है, वर्णन करें।

7. ओडिसी नृत्य के गुरुओं एवं नृत्यांगनाओं के नाम लिखें।

[क्रिया कलाप–ओडिसी नृत्य की नृत्यांगनाओं की तस्वीर इकट्ठा करें तथा उनके नाम लिखें]

❑

उत्कृष्ठ प्रदर्शन के साथ आपने भारत भर का भ्रमण किया। आपने अपना कर्मक्षेत्र दिल्ली को बनाया और यहीं से आप सभी अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में नृत्य प्रस्तुत करती रही। आपने पाकिस्तान, नेपाल, वर्मा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथ यूरोपीय देशों की यात्रा की।

कुच्चीपुड़ी नृत्य में भी आपका योगदान उल्लेखनीय है। आपने गुरु पंकज चरणदास–से ओडिसी नृत्य भी सीखा तथा 'पंचकन्या' नृत्य पेश किया। आपको भारत सरकार द्वारा सन् 1968 में पद्मश्री के अलंकरण से विभूषित किया गया। भरतनाट्यम नृत्य में आपका योगदान उत्कृष्ट है।

प्रश्न

1. नृत्यांगना यामिनी कृष्णमूर्त्ति के गुरु कौन थे ?
2. यामिनी कृष्णमूर्त्ति को किस-किस अलंकरण से नवाजा गया ?
3. क्या आप भरतनाट्यम नृत्य सीखना पसन्द करेंगी ?
4. यामिनी कृष्णमूर्त्ति का जीवन परिचय एवं नृत्य में योगदान को वर्णित करें।